# डॉ. सागरमल जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जैन समाज, शाजापुर ( मध्यप्रदेश )

१९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रो. सागरमल जैन

# जीवन परिचय

## जन्म और बाल्यकाल

प्रो. सागरमल जैन का जन्म भारत के हृदय मालव अंचल के शाजापुर नगर में विक्रम संवत् 1988 की माघपूर्णिमा के दिन हुआ था। आपके पिता श्री राजमल जी शक्करवाले मध्यम आर्थिक स्थिति होने पर भी ओसवाल समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में माने जाते थे। आपका गोत्र मण्डलिक है। आपकी माता श्रीमती गंगाबाई एक धार्मिक महिला थीं। आपके जन्म के समय आपके पिताजी सपरिवार अपने नाना-नानी के साथ ही निवास करते थे, क्योंकि आपके दादा-दादी का देहावसान आपके पिताजी के बचपन में ही हो गया था। बालक सागरमल को सर्वाधिक प्यार और दुलार मिला अपने पिता की मौसी पानबाई से। उन्होंने ही आपके बाल्यजीवन में धार्मिक संस्कारों का वपन भी किया। वे स्वभावतः विरक्तमना थीं। विक्रम संवत् 1994 में जब आपकी वय लगभग 6 वर्ष की थी, तभी उन्होंने पूज्य साध्वी श्री रत्नकुंवर जी म.सा. के सान्निध्य में संन्यास ग्रहण कर लिया था। वे आज प्रवर्तनी रत्नकुँवरजी म.सा. के साध्वी संघ में वयोवृद्ध साध्वी प्रमुखा के रूप में शाजापुर नगर में ही स्थिरवास कर रहीं हैं। इस प्रकार आपका पालन-पोषण धार्मिक संस्कारमय परिवेश में हुआ। मालवा की माटी से सहजता और सरलता तथा परिवार से पापभीरुता एवं धर्म-संस्कार लेकर आपके जीवन की विकास यात्रा आगे बढ़ी।

## शिक्षा

बालक सागरमल की प्रारम्भिक शिक्षा तोड़ेवाले भैया की पाठशाला में हुई। यह पाठशाला तब अपने कठोर अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थी। यही कारण था कि आपके जीवन में अनुशासन और संयम के गुण विकसित हुए। इस पाठशाला से तीसरी कक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर आपको तत्कालीन ग्वालियर राज्य के ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की चौथी कक्षा में प्रवेश मिला। यहाँ रामजी भैया सितूतकर जैसे कठोर एवं अनुशासनप्रिय अध्यापकों के सान्निध्य में आपने कक्षा 4 से कक्षा 8 तक की शिक्षा ग्रहण की और सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। माध्यमिक (मिडिल) परीक्षा में प्रथम श्रेणी के साथ-साथ शाजापुर जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया। ज्ञातव्य है कि उस समय माध्यमिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीक्षा पास करने वालों के नाम ग्वालियर गजट में निकलते थे। जिस समय इस मिडिल स्कूल में आपने प्रवेश लिया था, उस समय द्वितीय महायुद्ध अपनी समाप्ति की ओर था और दिल्ली एवं बम्बई के मध्य आगरा-बाम्बे रोड पर स्थित शाजापुर नगर के उस स्कूल के पास का मैदान सैनिकों का पड़ाव स्थल था। साथ ही उस समय ग्वालियर राज्य में प्रजामण्डल द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन की गतिविधियाँ भी तेज हो गईं थीं। बाल्यावस्था की स्वाभाविक चपलता वश कभी आप आगरा-बम्बई सड़क पर गुजरते हुए गोरे सैनिकों को 'V for Victory' कह कर प्रोत्साहित करते, तो कभी प्रजामण्डल की प्रभात फेरियों के साथ 'भारतमाता की जय' का उद्घोष करते। बालक सागरमल ने इसी समय अपने मित्रों के साथ पार्श्वनाथ बाल मित्र-मण्डल की स्थापना की। सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों के साथ-साथ, मण्डल का एक प्रमुख कार्य था अपने सदस्यों को बीड़ी-सिगरेट आदि दुर्व्यसनों से मुक्त रखना। इसके लिए सदस्यों पर कड़ी चौकसी रखी जाती थी। परिणाम यह हुआ कि यह मित्र-मण्डली व्यसन-मुक्त और धार्मिक संस्कारों से युक्त रही।

माध्यमिक परीक्षा (कक्षा 8) उत्तीर्ण करने के पश्चात् परिवार के लोग सब से बड़ा पुत्र होने के कारण आपको व्यवसाय से जोड़ना चाहते थे, परन्तु आपके मन में अध्ययन की तीव्र उत्कण्ठा थी। उस समय शाजापुर नगर, ग्वालियर राज्य का जिला मुख्यालय था, फिर भी वहाँ कोई हाईस्कूल नहीं था। आपके अत्यधिक आग्रह पर आपके पिता ने आपकी ससुराल शुजालपुर के एक मात्र हाईस्कूल में अध्ययन के लिए प्रवेश दिलाया। ज्ञातव्य है कि बालक सागरमल की सगाई इसके पूर्व ही हो चुकी थी। किन्तु वहाँ प्रवेश के लगभग 15-20 दिन पश्चात् ही आप अस्वस्थ हो गये, फलतः मात्र डेढ़ माह के अल्प प्रवास के पश्चात् पारिवारिक ममता ने आपको वापस शाजापुर बुला लिया। इसप्रकार आपका अध्ययन स्थगित हो गया और आप अल्पवय में ही सर्राफे के व्यवसाय से जुड़ गये।

**विवाह एवं पारिवारिक तथा सामाजिक गतिविधियाँ**

आपकी सगाई तो बाल्यकाल में ही हो गयी थी और विवाह की योजना भी बहुत पहले ही बन गई थी, किन्तु आपकी सास कैंसर की असाध्य बीमारी से ग्रस्त हो जाने और बाद में उनकी मृत्यु हो जाने के कारण विवाह थोड़े समय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए टला तो सही किन्तु 17 वर्ष की वय में प्रवेश करते ही वैशाख शुक्ला त्रयोदशी वि. संवत् 2005 तदनुसार 21 मई 1948 को आपको श्रीमती कमलाबाई के साथ दाम्पत्य-सूत्र में बाँध दिया गया। अल्पवय में आपके विवाह का एक अन्य कारण यह भी था कि आपकी मातृतुल्या पूज्य साध्वी श्री पानकुंवर जी म.सा. के दीक्षित हो जाने और बाल्यकाल से ही आपकी रुचि साधु-सन्तों के समीप अधिक रहने की होने के कारण परिवार को भय था कि कहीं बालकमन पर वैराग्य के संस्कार न जम जायें ? इस प्रकार किशोरवय में ही आपको गृहस्थ जीवन और व्यवसाय से जुड़ जाना पड़ा। जो दिन आपके खेलने और खाने के थे, उन्हीं दिनों में आपको पारिवारिक एवं व्यावसायिक दायित्व का निर्वाह करना पड़ा। यद्यपि आपके मन में अध्ययन के प्रति अदम्य उत्साह था, किन्तु शाजापुर में हाईस्कूल का अभाव तथा पारिवारिक और व्यावसायिक दायित्वों का बोझ इसमें बाधक था, फिर भी जहाँ चाह होती है वहाँ कोई न कोई राह निकल ही आती है।

**व्यवसाय के साथ-साथ अध्ययन**

चार वर्ष के अन्तराल के पश्चात् सन् 1952 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'व्यापार विशारद' की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके दो वर्ष पश्चात् 1954 में अर्थशास्त्र विषय से साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस समय आपने अर्थशास्त्र को सुगम ढंग से अध्ययन करने और स्मृति में रखने का एक चार्ट बनाया था, जिसकी प्रशंसा उस समय के एम.ए. अर्थशास्त्र के छात्रों ने भी की थी। इसी बीच आपका पत्र-व्यवहार इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री भगवानदास जी केला से हुआ। उन्होंने श्री नरहरि पारिख के मानव अर्थशास्त्र के आधार पर हिन्दी में मानव अर्थशास्त्र लिखने हेतु आपको प्रेरित किया था। तब आप हाईस्कूल भी उत्तीर्ण नहीं थे और आपकी वय मात्र बीस वर्ष की थी। इस समय आपके एक नये मित्र बने सारंगपुर के श्री मदनमोहन राठी। इसी काल में आपने धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी से जैन सिद्धान्त विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1953 में शाजापुर नगर में एक प्राइवेट हाईस्कूल प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अपने व्यावसायिक क्रिया-कलापों में व्यस्त होने के कारण आप उसके छात्र तो नहीं बन सके, किन्तु आपके मन में अध्ययन की प्रसुप्त भावना पुनः जागृत हो गई और सन् 1955 में आपने अपने मित्र श्री माणकचन्द्र जैन के साथ स्वाध्यायी छात्र के रूप में हाईस्कूल की परीक्षा दी। वय में माणकचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपसे तीन वर्ष छोटे थे फिर भी आप दोनों में गहरी दोस्ती थी। यद्यपि आप नियमित अध्ययन तो नहीं कर सके, फिर भी अपनी प्रतिभा के बल पर आपने उस परीक्षा में उच्च द्वितीय श्रेणी के अंक प्राप्त किये। अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने के परिणामस्वरूप आप के मन में अध्ययन की भावना पुनः तीव्र हो गयी। इसी अवधि में व्यवसाय के क्षेत्र में भी आपने अच्छी सफलता और कीर्ति अर्जित की। पिता जी की प्रामाणिकता और अपने सौम्य व्यवहार के कारण आप ग्राहकों का मन मोह लिया करते थे। परिणामस्वरूप आपको व्यावसायिक क्षेत्र में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अल्प वय में ही आपको शाजापुर नगर के सर्राफा एसोसियेशन का मंत्री बना दिया गया। पारिवारिक और व्यावसायिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी आपमें अध्ययन की रुचि सदैव जीवन्त रही। अतः आपने सन् 1957 में इण्टर कामर्स की परीक्षा दे ही दी और इस परीक्षा में भी उच्च द्वितीय श्रेणी के अंक प्राप्त किये। यह आपका सद्भाग्य ही कहा जायेगा कि चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो या अध्ययन का असफलता और निराशा का मुख आपने कभी नहीं देखा। किन्तु आगे अध्ययन का क्रम पुनः खण्डित हो गया, क्योंकि उस समय शाजापुर नगर में कोई महाविद्यालय नहीं था और बी.ए. की परीक्षा स्वाध्यायी छात्र के रूप में नहीं दी जा सकती थी। अतः एक बार पुनः आपको व्यवसाय के क्षेत्र में ही केन्द्रित होना पड़ा, किन्तु भाग्यवानों के लिए कहीं न कहीं कोई द्वार उद्घाटित हो ही जाता है। उस समय म.प्र. शासन ने यह नियम प्रसारित किया कि 25000 रु. की स्थायी राशि बैंक में जमा करके कोई भी संस्था महाविद्यालय का संचालन कर सकती है। अतः आपने तत्कालीन विधायक श्री प्रताप भाई से मिलकर एक महाविद्यालय खुलवाने का प्रयत्न किया और विभिन्न स्रोतों से धन राशि की व्यवस्था करके बालकृष्ण शर्मा नवीन महाविद्यालय की स्थापना की और स्वयं भी उसमें प्रवेश ले लिया। व्यावसायिक दायित्व से जुड़े होने के कारण आप अधिक नियमित नहीं रह सके, फिर भी बी.ए. परीक्षा में बैठने का अवसर तो प्राप्त हो ही गया। इस महाविद्यालय के माध्यम से सन् 1961 में बी.ए. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इस समय आप पर व्यावसायिक, पारिवारिक और सामाजिक दायित्व इतना अधिक था कि चाहकर भी अध्ययन के लिए आप अधिक समय नहीं दे पाते थे। अतः अंकों का प्रतिशत बहुत उत्साहजनक नहीं रहा तो भी शाजापुर से जो छात्र इस परीक्षा में बैठे थे उनमें आपके अंक सर्वाधिक थे। आपके तत्कालीन साथियों में श्री मनोहरलाल जैन एवं आपके ममेरे भाई रखबचन्द्र प्रमुख थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## परिवार और समाज

गृही जीवन में सन् 1951 में आपको प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, किन्तु दुर्दैव से वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सका। अगस्त 1952 में आपके द्वितीय पुत्र नरेन्द्रकुमार का जन्म हुआ। सन् 1954 में पुत्री कु. शोभा का और 1957 में पुत्र पीयूषकुमार का जन्म हुआ। बढ़ता परिवार और पिताजी की अस्वस्थता तथा छोटे भाई-बहनों का अध्ययन -- इन सब कारणों से मात्र पच्चीस वर्ष की अल्पवय में ही आप एक के बाद एक जिम्मेदारियों के बोझ से दबते ही गये। उधर सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी आपकी प्रतिभा और व्यवहार के कारण आप पर सदैव एक के बाद दूसरी जिम्मेदारी डाली जाती रही। इसी अवधि में आपको माधव रजत जयंती वाचनालय, शाजापुर का सचिव, हिन्दी साहित्य समिति, शाजापुर का सचिव तथा कुमार साहित्य परिषद् और सद्-विचार निकेतन के अध्यक्ष पद के दायित्व भी स्वीकार करने पड़े। आपके कार्यकाल में कुमार साहित्य परिषद् का म.प्र. क्षेत्र का वार्षिक अधिवेशन एवं नवीन जयंती समारोहों के भव्य आयोजन भी हुए। इस माध्यम से आप बालकवि बैरागी, पद्मश्री डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा आदि देश के अनेक साहित्यकारों से भी जुड़े। इसी अवधि में आप स्थानीय स्थानकवासी जैन संघ के मंत्री तथा म.प्र. स्थानकवासी जैन युवक संघ के अध्यक्ष बनाये गये। सादड़ी सम्मेलन के पश्चात् स्थानकवासी जैन युवक संघ के प्रान्तीय अध्यक्ष के रूप में आपने म.प्र. के विभिन्न क्षेत्रों का व्यापक दौरा भी किया तथा जैन समाज की एकता को स्थायित्व देने का प्रयत्न किया।

## एम.ए. का अध्ययन और व्यवसाय में नया मोड़

इन गतिविधियों में व्यस्त होने के बावजूद भी आपकी अध्ययन की अभिरुचि कुंठित नहीं हुई, किन्तु कठिनाई यह थी कि न तो शाजापुर में स्नातकोत्तर कक्षायें खुलनी सम्भव थीं और न इन दायित्वों के बीच शाजापुर से बाहर किसी महाविद्यालय में प्रवेश लेकर अध्ययन करना ही, किन्तु शाजापुर महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य श्री रामचन्द्र 'चन्द्र' की प्रेरणा से एक मध्यम मार्ग निकाला गया और यह निश्चय हुआ कि यदि कुछ दिन नियमित रहा जाये तो अग्रिम अध्ययन की कुछ सम्भावनायें बन सकतीं हैं। उन्हीं के निर्देश पर आपने जुलाई 1961 में क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर में एम.ए. दर्शन-शास्त्र के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यार्थी के रूप में प्रवेश लिया। इन्दौर में अध्ययन करने में आवास, भोजन आदि की अनेक कठिनाइयाँ रहीं। सर्वप्रथम आपने चाहा कि क्रिश्चियन कालेज के सामने नसियाजी में स्थित दिगम्बर जैन छात्रावास में प्रवेश लिया जाय, किन्तु वहाँ आपका श्वेताम्बर कुल में जन्म लेना ही बाधक बन गया, फलतः क्रिश्चियन कालेज के छात्रावास में प्रवेश लेना पड़ा। वहाँ नियमानुसार छात्रावास के भोजनालय में भोजन करना आवश्यक था, किन्तु उसमें शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन बनते थे और चम्मच तथा बर्तनों का कोई विवेक नहीं रखा जाता था। कुछ दिन आपने मात्र दही और रोटी खाकर निकाले, किन्तु अन्त में विवश होकर छात्रावास छोड़ दिया। कुछ दिन इधर-उधर रहकर गुजारे, अन्त में राजेन्द्र नगर में मकान लेकर रहने लगे। कुछ दिन पत्नी को भी साथ ले गये, किन्तु पारिवारिक स्थिति में यह सुख अधिक सम्भव नहीं था। फिर भी आपने अपने अध्ययन-क्रम को निरन्तर जारी रखा। सप्ताह में दो-तीन दिन इन्दौर और शेष समय शाजापुर। इसी भाग-दौड़ में आपने सन् 1962 में एम.ए. पूर्वार्द्ध और सन् 1963 में एम.ए. उत्तरार्द्ध की परीक्षाएँ न केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, अपितु तत्कालीन पश्चिमी मध्य-प्रदेश के एकमात्र विश्वविद्यालय विक्रम विश्वविद्यालय की कला संकाय में द्वितीय स्थान भी प्राप्त किया। ज्ञातव्य है कि उस समय कला संकाय में सामाजिक विज्ञान संकाय भी समाहित थी।

एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपके जीवन में एक निर्णायक मोड़ का अवसर आया। सन् 1962 में मोरारजी देसाई ने स्वर्ण नियन्त्रण अधिनियम लागू किया, फलस्वरूप स्वर्ण-व्यवसाय प्रतिबन्धित व्यवसाय के क्षेत्र में आ गया और इस व्यवसाय को प्रामाणिकता पूर्वक कर पाना कठिन हो गया और चोरी-छिपे धन्धा करना आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं था। अतः आपने अपने व्यवसाय को एक नया मोड़ देने का निश्चय किया। आपका छोटा भाई कैलाश, जो उस समय एम.काम. (अन्तिम वर्ष) में था, उसके लिए भी स्वतन्त्र व्यवसाय का प्रश्न था। अतः आपने स्वर्ण के व्यवसाय के स्थान पर कपड़े का व्यवसाय प्रारम्भ करने का निश्चय किया। कठिनाई यह थी कि इन दोनों व्यवसायों को किस प्रकार संचालित किया जाय, क्योंकि अभी भाई कैलाश को अपना अध्ययन पूर्ण कर लौटने में कुछ समय था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**दर्शनशास्त्र के अध्यापन**

एक ओर प्रबुद्ध वर्ग का आग्रह था कि दर्शन जैसे विषय में प्रथम श्रेणी एवं प्रथम स्थान में स्नातकोत्तर परीक्षा पास करके भी व्यावसायिक कार्यों से जुड़े रहना यह प्रतिभा का सम्यक् उपयोग नहीं है, तो दूसरी ओर पारिवारिक परिस्थितियाँ और दायित्व व्यवसाय के क्षेत्र का परित्याग करने में बाधक थे। वस्तुतः सरस्वती और लक्ष्मी की उपासना में से किसी एक के चयन का प्रश्न आ खड़ा हुआ था। यह आपके जीवन का निर्णायक मोड़ था। स्वर्ण नियन्त्रण कानून लागू होना आदि कुछ बाह्य परिस्थितियों ने भी जीवन के इस निर्णायक मोड़ पर आपको एक दूसरा ही निर्णय लेने को प्रेरित किया। फिर भी लगभग 50 वर्षों से सुस्थापित तथा अपने पूरे क्षेत्र में प्रतिष्ठित उस व्यावसायिक प्रतिष्ठान को एकाएक बन्द कर देना न सम्भव ही था और न ही परिवार के हित में। यह भी संयोग था कि सन् 1964 के मध्य में म.प्र. शासन की ओर से दर्शनशास्त्र के व्याख्याताओं के कुछ पदों के लिए चयन की अधिसूचना प्रसारित हुई। जब आपको उस विज्ञापन की जानकारी हुई तो आपने भी सहज रूप से एक आवेदन पत्र प्रस्तुत कर दिया। आवेदन पत्र पहुँचने के कुछ समय पश्चात् ही आपको म.प्र. शासन की ओर से दर्शनशास्त्र के व्याख्याता पद पर नियुक्ति का आदेश प्राप्त हुआ। आपने सोचा भी नहीं था कि यह सब इतने सहज रूप में हो जायेगा। अब यह निर्णय की घड़ी थी। एक ओर माता-पिता और परिजन व्यवसाय से जुड़े रहने का आग्रह करते थे तो दूसरी ओर अन्तर में छिपी ज्ञानार्जन की ललक व्यवसाय से निवृत्ति लेकर विद्या की उपासना हेतु प्रेरित कर रही थी। आपके भाई कैलाश, जो उस समय उज्जैन विक्रम विश्वविद्यालय में एम.काम. के अन्तिम वर्ष में थे, उससे आपने विचार-विमर्श किया और उसके द्वारा आश्वस्त किये जाने पर आपने दर्शनशास्त्र के व्याख्याता के रूप में शासकीय सेवा स्वीकार करने का निर्णय ले लिया। फिर भी पिताजी का स्वास्थ्य और व्यवसाय का विस्तृत आकार ऐसा नहीं था कि आपकी अनुपस्थिति में केवल पिताजी उसे सम्भाल सकें, ये अन्तर्द्वन्द्व के कठिन क्षण थे। लक्ष्मी और सरस्वती की उपासना के इस द्वन्द्व में अन्ततोगत्वा सरस्वती की विजय हुई और दुकान पर दो मुनीमों की व्यवस्था करके आप शासकीय सेवा के लिए चल दिये।

आपकी प्रथम नियुक्ति महाकौशल महाविद्यालय जबलपुर में हुई। संयोग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ आपके पूर्व परिचित उस समय के आचार्य रजनीश (बाद के भगवान और ओशो) उसी विभाग में कार्यरत थे। आपने उनसे पत्र व्यवहार किया और दीपावली पर्व पर लक्ष्मी की अन्तिम आराधना करके सरस्वती की उपासना के लिए 5 नवम्बर, 1964 को जबलपुर के लिए प्रस्थान किया। बिदाई दृश्य बड़ा ही करुण था। पूरे परिवार और समाज में यह प्रथम अवसर था जब कोई नौकरी के लिये घर से बहुत दूर जा रहा था। मित्रगण और परिजनों का स्नेह एक ओर था, तो दूसरी ओर आपका दृढ़ निश्चय। पिताजी की माँग पर बड़े पुत्र को उनके पास रखने का आश्वासन देकर अश्रुपूर्ण आँखों से बिदा ली।

जबलपुर में जिस पद पर आपको नियुक्ति मिली थी वह पद वहाँ के एक व्याख्याता के प्रमोशन से रिक्त होना था, किन्तु वे जबलपुर छोड़ना नहीं चाहते थे। तीन दिन प्राचार्य के कार्यालय के चक्कर लगाये, किन्तु अन्त में शिक्षा सचिव से हुई मौखिक चर्चा के आधार पर प्राचार्य ने आपको एक पत्र दे दिया, जिसके आधार पर आपको ठाकुर रणमत्तसिंह कालेज, रीवाँ में दर्शनशास्त्र के व्याख्याता का पद ग्रहण करना था। रीवाँ आपके लिए पूर्णतः अपरिचित था, फिर भी आचार्य रजनीश आदि की सलाह पर तीन दिन जबलपुर में बिताने के पश्चात् रीवाँ के लिए रवाना हुए। यहाँ विभाग में डॉ. डी.डी. बन्दिष्टे का और महाविद्यालय के डॉ. कन्छेदीलाल जैन आदि अनेक जैन प्राध्यापकों का सहयोग मिला। एक मकान लेकर दोनों समय ढाबे में भोजन करते हुए आपने अध्यापन कार्य की इस नई जिन्दगी का प्रारम्भ किया। पहली बार आपको लगा कि पढ़ने-पढ़ाने का आनन्द कुछ और है किन्तु रीवाँ का यह प्रवास भी अधिक स्थायी न बन सका। शासन द्वारा वहाँ किसी अन्य व्यक्ति को भेज दिये जाने के कारण आपको आदेशित किया गया कि आप महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर महाविद्यालय ग्वालियर जाकर अपना पदभार ग्रहण करें। 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः' की उक्ति के अनुसार शासकीय सेवा का यह अस्थायित्व और एक शहर से दूसरे शहर भटकना आपके मन को अच्छा नहीं लगा और एक बार मन में यह निश्चय किया कि शासकीय सेवा का परित्याग कर देना ही उचित है, किन्तु प्रो. बन्दिष्टे और कुछ मित्रों के समझाने पर आपने इतना माना कि आप ग्वालियर होकर ही शाजापुर जायेंगे।

ग्वालियर जाने में आपके दो-तीन आकर्षण थे, एक तो म.प्र. स्थानकवासी जैन युवक संघ की ग्वालियर शाखा के प्रमुख श्री टी.सी. बाफना आपके पूर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचित थे, दूसरे प्रो. जी.आर. जैन से भी आपका पूर्व परिचय था और आप जैन सापेक्षतावाद और आधुनिक विज्ञान पर शोधकार्य करने की दृष्टि से उनसे अधिक गहराई से विचार-विमर्श करना चाहते थे। अतः 27 नवम्बर 1964 को मात्र 17 दिन के रीवाँ प्रवास के पश्चात् आप ग्वालियर के लिए रवाना हुए। ग्वालियर पहुँचने पर आप मान-मन्दिर होटल में रुके और प्रातः महाविद्यालय के प्राचार्य प्रो.एम.एम. कुरेशी और विभागाध्यक्ष डॉ. एस.एस. बनर्जी से मिले। दोपहर में आपने टी.सी. बाफना और प्रो. जी.आर. जैन से मिलने का कार्यक्रम बनाया। जब प्रो. जी.आर. जैन से मिले तो उनका पहला प्रश्न था कहाँ रुके हो? यह बताने पर उनका पहला वाक्य था -- तुम सामान लेकर आ जाओ और तत्काल ही एक हाल की साफ-सफाई कर आपके रहने की व्यवस्था अपने ही घर में कर दी। संध्या को महाविद्यालय के दर्शन-विभाग के व्याख्याता डॉ. अशोक लाड और वाणिज्य विभाग के श्री गोविन्द दास माहेश्वरी आप से मिलने आये। इनसे प्रथम परिचय ही ऐसा रहा कि आप तीनों गहरे मित्र बन गये। एक ही दिन में परिवेश ही बदल गया और शाजापुर वापस लौट जाने का विकल्प समाप्त हो गया। दिसम्बर में शीतकालीन अवकाश के पश्चात् जनवरी 1965 में आप छोटे पुत्र, पुत्री और पत्नी को लेकर ग्वालियर आ गये। यद्यपि आप के लिए अध्यापन का कार्य बिल्कुल नया था, किन्तु पर्याप्त परिश्रम और विषय की पकड़ होने से आप शीघ्र ही छात्रों के प्रिय बन गये। संयोग से महाविद्यालय में उसी वर्ष दर्शनशास्त्र की स्नातकोत्तर कक्षायें प्रारम्भ हुई थीं। अतः आपने कठिन परिश्रम करके छात्रों को न केवल महाविद्यालय में पढ़ाया, बल्कि घर पर बुलाकर भी उनकी तैयारी कराते रहे। सभी का परीक्षाफल भी अच्छा रहा। अतः शीघ्र ही एक सुयोग्य अध्यापक के रूप में आपकी ख्याति हो गयी।

ग्वालियर में जब मनोविज्ञान का स्वतन्त्र विषय प्रारम्भ हुआ तो आपने प्रारम्भ में उसके अध्यापन का दायित्व भी दर्शनशास्त्र के अध्यापन के साथ-साथ सम्भाला। आपने 'जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन' जैसा व्यापक विषय लेकर पी-एच.डी. की उपाधि हेतु अपना पंजीयन करवाया और शोध प्रबन्ध लिखने की तैयारी में जुट गये। इसी सन्दर्भ में जैन और बौद्ध परम्परा के मूल ग्रन्थों विशेष रूप से जैन आगमों और बौद्ध त्रिपिटक साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया।

**अध्यापक के रूप में पुनः मालव भूमि में**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्वालियर में आपका प्रवास पूरे तीन वर्ष रहा। इसी अवधि में आपका चयन म.प्र. लोक सेवा आयोग से हो चुका था और उसमें वरीयताक्रम में आपको प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। सूची में सर्वोच्च स्थान पर होने के कारण सहायक प्राध्यापक के रूप में आपकी पदोन्नति करने के लिए शासन प्रतीक्षारत था। उधर परिवार के लोग भी यह चाहते थे कि ग्वालियर जैसे सुदूर नगर की अपेक्षा शाजापुर के निकटवर्ती उज्जैन, इन्दौर आदि स्थानों पर आपका स्थानान्तरण हो जाय। संयोग से तत्कालीन उपशिक्षा मंत्री श्री कन्हैयालाल मेहता आपके परिजनों के परिचित थे, अतः नवम्बर 1967 में आपको शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इन्दौर स्थानान्तरित किया गया एवं जुलाई 1968 में सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष बनाकर आपको हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल भेज दिया गया। वैसे तो इन्दौर और भोपाल दोनों ही आपके गृह नगर शाजापुर से नजदीक थे, किन्तु इन्दौर की अपेक्षा भोपाल में अध्ययन की दृष्टि से यहाँ अधिक समय-मिलने की सम्भवना थी। अतः आपने 1 अगस्त 1968 को हमीदिया महाविद्यालय में दर्शनशास्त्र के सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष का पद ग्रहण किया। इस महाविद्यालय में दर्शनशास्त्र विषय प्रारम्भ ही हुआ था और मात्र दो छात्र थे। अतः प्रारम्भ में अध्यापन कार्य का अधिक भार न होने से आपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने का प्रयत्न किया और अगस्त 1969 में लगभग 1500 पृष्ठों का बृहद्काय शोधप्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया। विभाग में छात्रों की अत्यल्प संख्या और महाविद्यालय में दर्शनशास्त्र विषय के उपेक्षित होने के कारण आपका मन पूरी तरह नहीं लग पा रहा था, अतः आपने दर्शनशास्त्र को लोकप्रिय बनाने का बीड़ा उठाया। संयोग से आपके भोपाल पहुँचने के बाद दूसरे वर्ष ही भोपाल विश्वविद्यालय की स्थापना हो गयी और आपको दर्शनशास्त्र विषय की अध्ययन समिति का अध्यक्ष तथा कला संकाय एवं विद्वत् परिषद का सदस्य बनने का मौका मिला। आपने पाठ्यक्रम में समाजदर्शन, धर्मदर्शन जैसे रुचिकर प्रश्नपत्रों का समायोजन किया। साथ ही छात्र और महाविद्यालय की परिस्थितियों के अनुरूप मुस्लिम-दर्शन और ईसाई-दर्शन के विशिष्ट पाठ्यक्रम निर्धारित किये। एक ओर संशोधित पाठ्यक्रम और दूसरी ओर आपकी अध्यापन शैली के प्रभाव से छात्र संख्या में वृद्धि होने लगी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि बी.ए. प्रथम वर्ष में लगभग सौ से भी अधिक छात्र होने लगे और परिणामस्वरूप अध्यापन-कक्ष छोटे पड़ने लगे। अन्ततोगत्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाविद्यालय के एक छोटे हाल में दर्शनशास्त्र की कक्षाएँ लगने लगीं। यह आपकी अध्यापन शैली और छात्रों के प्रति आत्मीयता का ही परिणाम था कि सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में दर्शन शास्त्र के विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से आपका महाविद्यालय सर्वोच्च स्थान पर आ गया। लगभग ३०० छात्रों को प्रतिदिन पाँच-पाँच पीरियड पढ़ाकर महाविद्यालय के कर्त्तव्यनिष्ठ अध्यापकों में आपने अपना स्थान बना लिया। महाविद्यालय में प्रवेश समिति, टाइम-टेबल समिति, छात्र परिषद तथा परीक्षा सम्बन्धी गतिविधियों से भी आप शीघ्र ही जुड़ गये और इस सम्बन्ध में प्राचार्य के द्वारा दिये गये दायित्वों का प्रामाणिकता के साथ निर्वाह किया। मात्र यही नहीं, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान विषयों के प्रारम्भ होने पर आपने उनकी कक्षाओं में भी अध्यापन किया। इस प्रकार एक प्रबुद्ध और कर्त्तव्यनिष्ठ अध्यापक के रूप में आपकी छवि उभर कर सामने आई। आपने दर्शनशास्त्र में अन्य अध्यापकों के पदों के सृजन और दर्शनशास्त्र के स्नातकोत्तर अध्ययन प्रारम्भ किये जाने के लिए भी प्रयत्न प्रारम्भ किये और इसमें आपको सफलता भी मिली। आपको श्री प्रमोद कोयल जैसा योग्य साथी मिल गया। स्नातकोत्तर कक्षाओं के खोलने के सम्बन्ध में भी शासन सहमत हो गया, किन्तु इसी बीच आपको प्रतिनियुक्ति पर पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान में निदेशक बनकर बनारस आना पड़ा। फिर भी आपकी एवं आपके साथी प्रमोद कोयल की पहल असफल नहीं रही और शासन ने हमीदिया महाविद्यालय में स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ करने का निर्देश दे ही दिया।

भोपाल में दर्शनशास्त्र अध्ययन समिति के अध्यक्ष होने के नाते आपको प्रो. चन्दधर शर्मा, प्रो. एस.एस. बारलिंगे जैसे सुप्रसिद्ध दार्शनिकों के आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवधि में 2500वीं महावीर निर्वाण शताब्दी के प्रसंग पर रायपुर, उज्जैन, इन्दौर, पूना और उदयपुर के विश्वविद्यालयों द्वारा व्याख्यान एवं संगोष्ठियों में भाग लेने हेतु आप आमन्त्रित किये गये। जब आप भोपाल में ही थे तब दर्शनशास्त्र के पुनश्चर्या पाठ्यक्रम हेतु एक माह के लिए आप पूना विश्वविद्यालय गये। वहाँ प्रो. एस.एस. बारलिंगे के द्वारा दर्शनशास्त्र विभाग में एक जैन चेयर स्थापित करने के प्रयासों में आप भी सहयोगी बने। पूना के जैन समाज के अग्रगण्यों, विशेष रूप से श्री नवलमल जी फिरोदिया के सहयोग से वहाँ जैन चेयर की स्थापना भी हुई। फिरोदिया जी और प्रो. बारलिंगे की हार्दिक इच्छा थी कि आप पूना की जैन चेयर को सम्भाले, किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियति को कुछ और ही मंजूर था। पं. दलसुखभाई मालवणिया का आदेश था कि आप पार्श्वनाथ विद्याश्रम की चरमराती हुई स्थिति को सम्हालने के लिए वाराणसी जायें। आपके सामने एक कठिन समस्या थी, एक ओर स्थायित्वपूर्ण शासकीय सेवा तथा घर-परिवार और अपने लोगों के निकट रहने का सुख, तो दूसरी ओर घर-परिवार से दूर एक चरमराती हुई जैन विद्या संस्था को सम्भालने का प्रश्न। उस समय पार्श्वनाथ विद्याश्रम की प्रतिष्ठा तो थी, किन्तु उसकी आर्थिक स्थिति डाँवा-डोल थी। अतः कोई भी वहाँ रहना नहीं चाहता था। फ़िर भी एक जैन विद्या संस्थान के उद्धार का निश्चय लेकर आपने तत्कालीन संचालन समिति के अध्यक्ष श्री शादीलालजी जैन एवं कोषाध्यक्ष गुलाबचन्दजी जैन को आश्वासन दिया कि यदि आप लोग मेरी प्रति नियुक्ति का आदेश म.प्र. शासन से निकलवा सकें और संस्थान की अर्थ-व्यवस्था के सुधार हेतु प्रयत्न करें तो मैं विद्याश्रम आ जाऊंगा। तत्कालीन बंगाल के उपमुख्य मंत्री विजयसिंह नाहर के प्रयत्नों से आपकी प्रतिनियुक्ति के आदेश निकले और आपने 1979 में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान में निदेशक का कार्यभार ग्रहण का लिया।

**विद्यानगरी काशी में**

आपके काशी आगमन से संस्थान को एक नव जीवन मिला और आपने अपने श्रम से विद्याश्रम को एक नये कीर्तिमान पर लाकर खड़ा कर दिया।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम में आपके आगमन ने जहाँ एक ओर विद्याश्रम की प्रगति को नवीन गति दी, वहीं दूसरी ओर आपको अपने अध्ययन के क्षेत्र में भी नवीन दिशायें मिली। विद्याश्रम को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास विभाग, कला इतिहास विभाग, हिन्दी विभाग, दर्शन विभाग, संस्कृत और पालि विभाग आदि में शोध छात्रों के पंजीयन की सुविधा मिली हुई है, अतः आपको इन विविध विषयों के शोध छात्र उपलब्ध हुए। शोध-छात्रों के मार्ग-दर्शन हेतु यह आवश्यक था कि निर्देशक स्वयं भी उन विषयों से परिचित हो, अतः आपने जैनधर्म-दर्शन के अलावा जैन कला, पुरातत्त्व और इतिहास का भी अध्ययन किया। प्रामाणिक शोधकार्य के लिए द्वितीय श्रेणी के ग्रन्थों से काम नहीं चलता है, मूल ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक होता है। आपने शोध छात्रों एवं जिज्ञासु विदेशी छात्रों के हेतु मूल ग्रन्थों के अध्ययन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकता का अनुभव किया। अतः आपने परम्परागत शैली से और आधुनिक शैली से मूल ग्रन्थों का अध्ययन किया और करवाया। मूल ग्रन्थों में आगमों के साथ-साथ विशेषावश्यकभाष्य, सन्मतितर्क, आप्तमीमांसा, जैन तर्कभाषा, प्रमाणमीमांसा, न्यायावतार (सिद्ध ऋषि की टीका सहित), सप्तभंगीतंरगिणी आदि जटिल दार्शनिक ग्रन्थों का भी सहज और सरल शैली में अध्यापन किया। आपके सान्निध्य में ज्योतिषाचार्य जयप्रभविजयजी, मुनि हितेशविजयजी, मुनिश्री ललितप्रभसागरजी, मुनिश्री चन्द्रप्रभसागरजी, श्री अशोकमुनिजी, साध्वी श्री सुदर्शनाश्री जी, साध्वी प्रियदर्शनाश्री जी, साध्वीश्री सुमतिबाई स्वामी और उनकी शिष्यायें, साध्वीश्री प्राणकुंवरबाई स्वामी एवं उनकी शिष्याएँ, साध्वीश्री प्रमोदकुंवरजी, साध्वीश्री पुष्पकुंवर जी और उनकी शिष्याएँ, साध्वीश्री शिलापीजी, मुमुक्षु बहन मंगलम् आदि अनेक साधु-साध्वियों एवं वैरागी भाई-बहनों ने आगमों के साथ-साथ इन दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। विविध साधु-साध्वियों के अध्यापन के साथ-साथ आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी जाकर जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी प्रश्नपत्रों का अध्यापन कार्य करते रहे हैं। अनेक विदेशी छात्र भी अध्ययन एवं अपने शोध कार्यों में सहयोग हेतु आपके पास आते रहते हैं। एक पोलिश प्राध्यापक ने आपके साथ तत्त्वार्थ-भाष्य का अध्ययन किया।

विद्याश्रम में आपको श्रमण के संपादन एवं प्रूफ रीडिंग के साथ-साथ अपने शोध छात्रों द्वारा लिखे निबन्धों तथा विविध शीर्षस्थ विद्वानों के ग्रन्थों के संपादन, प्रकाशन और प्रूफरीडिंग का कार्य करना पड़ा। इसका सबसे बड़ा लाभ आपको यह हुआ कि जैनधर्म, दर्शन, साहित्य, कला, इतिहास आदि की विविध विधाओं में आपकी गहरी पैठ हो गयी।

## प्रतिष्ठा और पुरस्कार

हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल में कार्य करते समय भी आपको राष्ट्रीय स्तर की अनेक संगोष्ठियों और कान्फ्रेंसों में जाने का अवसर मिला। जहाँ आपने अपने विद्वत्तपूर्ण आलेखों एवं सौजन्यपूर्ण व्यवहार से दर्शन एवं जैन विद्या के शीर्षस्थ विद्वानों में अपना स्थान बना लिया। जब आप भोपाल में थे, तभी प्रो. बारलिंगे के विशेष आग्रह पर आपको न केवल दर्शन परिषद के कोषाध्यक्ष का भार सम्भालना पड़ा, अपितु दार्शनिक त्रैमासिक के प्रबन्ध संपादक का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दायित्व भी ग्रहण करना पड़ा था, जिसका निर्वाह वाराणसी आने के पश्चात् भी सन् 1986 तक करते रहे। सम्प्रति भी आप अ.भा. दर्शन परिषद के वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं।

हमीदिया महाविद्यालय के दर्शन विभागाध्यक्ष एवं पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निदेशक के रूप में कार्य करते हुए आपकी प्रतिभा को सम्मान के अनेक अवसर उपलब्ध हुए। न केवल आपके अनेक आलेख पुरस्कृत हुए, अपितु आपके शोध-ग्रन्थ जैन, बौद्ध और गीता के आचारों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग-1 एवं भाग-2 को प्रदीपकुमार रामपुरिया पुरस्कार से तथा जैन भाषादर्शन को स्वामी प्रणवानन्द दर्शन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

डॉ. सागरमल जैन, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी के निदेशक तो हैं ही, उसके साथ-साथ वे जैन विद्या की अनेक संस्थाओं से भी जुड़े हुए हैं। वे आगम अहिंसा समता और प्राकृत संस्थान, उदयपुर के भी मानद निदेशक हैं। जहाँ आपके मार्ग दर्शन में प्रकीर्णक साहित्य के अनुवाद का कार्य चल रहा है। अब तक पाँच प्रकीर्णक प्रकाशित हो चुके हैं। अ.भा. जैन विद्वत् परिषद के तो आप संस्थापक रहे हैं, वर्षों तक आप इसके उपाध्यक्ष भी रहे हैं। राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी के आप उपाध्यक्ष हैं। जैन विद्या के क्षेत्र में जब और जहाँ कहीं भी कोई योजना बनती है, मार्ग निर्देशन हेतु आपका स्मरण अवश्य किया जाता है। वस्तुतः आप विद्वान् तो हैं ही, किन्तु एक सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। आपके द्वारा राष्ट्रीय स्तर की अनेक कान्फ्रेंसो और संगोष्ठियों का सफलतापूर्वक आयोजन हुआ है।

**देश-विदेश की यात्रा**

देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और जैन संस्थाओं ने आपके व्याख्यानों का आयोजन किया। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, पाटण, उदयपुर, जोधपुर, दिल्ली, उज्जैन, इन्दौर आदि अनेक नगरों में आपके व्याख्यान आयोजित किये जाते रहें हैं। साथ ही आप विभिन्न विश्वविद्यालयों में विषय-विशेषज्ञ के रूप में भी आमन्त्रित किये जाते हैं। यही नहीं आपको एसोशियेशन आफ वर्ल्ड रिलीजन्स 1985 में तथा पार्लियामेन्ट आफ वर्ल्ड रिलीजन्स 1993 में जैनधर्म के प्रतिनिधि वक्ता के रूप में अमेरिका में आमन्त्रित किया गया। पार्लियामेन्ट आफ वर्ल्ड रिलीजन्स के अवसर पर न केवल आपने वहाँ अपना निबन्ध प्रस्तुत किया अपितु अमेरिका के विभिन्न नगरों --

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिकागो, न्यूयार्क, राले, वाशिंगटन, सेनफ्रॅंसिस्को, लासएन्जिल्स, फिनिक्स आदि में जैनधर्म के विविध पक्षों पर व्याख्यान भी दिये। इस प्रकार जैनधर्म-दर्शन और साहित्य के अधिकृत विद्वान् के रूप में आपका यश देश एवं विदेश में प्रसारित हुआ।

**सत्यनिष्ठा**

विद्याश्रम में कार्यरत रहते हुए आपने अनेक ग्रन्थों, लघु पुस्तिकाओं और निबन्धों के माध्यम से भारती के भण्डार को समृद्ध किया है। अपने कार्यकाल में लगभग 50 से अधिक ग्रन्थों में लगभग तीस हजार पृष्ठों की सामग्री को संपादित एवं प्रकाशित करके नया कीर्तिमान स्थापित किया है। आपके चिन्तन और लेखन की विशेषता यह है कि आप सदैव साम्प्रदायिक अभिनिवेशों से मुक्त होकर लिखते हैं। आपकी "जैन एकता" नामक पुस्तिका न केवल पुरस्कृत हुई अपितु विद्वानों में समादृत भी हुई। बौद्धिक ईमानदारी एवं सत्यान्वेषण की अनाग्रही शैली आपने पं. सुखलालजी संघवी और पं. दलसुखभाई मालवणिया के लेखन से सीखी। यद्यपि सम्प्रदाय मुक्त होकर सत्यान्वेषण के तथ्यों का प्रकाशन धर्ममीरू और आग्रहशील समाज को सीधा गले नहीं उतरता, किन्तु कौन प्रशंसा करता है और कौन आलोचना, इसकी परवाह किये वगैर आपने सदैव सत्य को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। उसके परिणामस्वरूप तटस्थ चिन्तकों, विद्वानों और साम्प्रदायिक अभिनवेशों से मुक्त सामाजिक कार्यकर्त्ताओं में आपके लेखन ने पर्याप्त प्रशंसा अर्जित की।

आज यह कल्पना भी दुष्कर लगती हे कि एक बालक जो 15-16 वर्ष की वय में ही व्यावसायिक और पारिवारिक दायित्वों के बोझ से दब सा गया था, अपनी प्रतिभा के बल पर विद्या के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगा। आज देश में जैन विद्या के जो गिने-चुने शीर्षस्थ विद्वान् हैं, उनमें अपना स्थान बना लेना यह डॉ. सागरमल जैन जैसे अध्यवसायी श्रमनिष्ठ और प्रतिभाशाली व्यक्ति की ही क्षमता है। यद्यपि वे आज भी ऐसा नहीं मानते हैं कि यह सब उनकी प्रतिभा एवं अध्यवसायिता का परिणाम है। उनकी दृष्टि में यह सब मात्र संयोग है। वे कहते हैं "जैन विद्या के क्षेत्र में विद्वानों का अकाल ही एक मात्र ऐसा कारण है, जिससे मुझ जैसा अल्पज्ञ भी सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है।" किन्तु हमारी दृष्टि में यह केवल उनकी विनम्रता का परिचायक है।

आप अपनी सफलता का सूत्र यह बताते हैं कि किसी भी कार्य को छोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत समझो और जिस समय जो भी कार्य उपस्थित हो पूरी प्रामाणिकता के साथ उसे पूरा करने का प्रयत्न करो।

आपके व्यक्तित्व के निर्माण में अनेक लोगों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पूज्य बाबाजी पूर्णमल जी म.सा. और इन्द्रमल जी म.सा. ने आपके जीवनमें धार्मिक-ज्ञान और संस्कारों के बीज का वपन किया था। पूज्य साध्वीश्री पानकुंवर जी म.सा. को तो आप अपनी संस्कारदायिनी माता ही मानते हैं। आपने डॉ. सी.पी. ब्रह्मों के जीवन से एक अध्यापक में दायित्वबोध एवं शिष्य के प्रति अनुग्रह की भावना कैसी होनी चाहिये, यह सीखा है। पं. सुखलालजी और पं. दलसुखभाई को आप अपना द्रोणाचार्य मानते हैं, जिनसे प्रत्यक्ष में कुछ नहीं सीखा, किन्तु परोक्ष में जो कुछ आप में है, वह सब उन्हीं का दिया हुआ मानते हैं। आपकी चिन्तन और प्रस्तुतीकरण की शैली बहुत कुछ उनसे प्रभावित है। आपने अपने पूज्य पिताजी से व्यावसायिक प्रामाणिकता और स्पष्टवादिता को सीखा यद्यपि आप कहते हैं कि स्पष्टवादिता का जितना साहस पिताजी में था, उतना आज भी मुझमें नहीं है। पत्नी आपके जीवन का यथार्थ है। आप कहते हैं कि यदि उससे यथार्थ को समझने और जीने की दृष्टि न मिली होती तो मेरे आदर्श भी शायद यथार्थ नहीं बन पाते। सेवा और सहयोग के साथ जीवन के कटुसत्यों को भोगने में जो साहस उसने दिलाया वह उसका सबसे बड़ा योगदान है। आप कहते हैं कि शिष्यों में श्यामनन्दन झा और डॉ. अरुणप्रताप सिंह ने जो निष्ठा एवं समर्पण दिया, वही ऐसा सम्बल है, जिसके कारण शिष्यों के प्रत्युपकार की वृत्ति मुझसे जीवित रह सकी, अन्यथा वर्तमान परिवेश में वह समाप्त हो गई होती। मित्रों में भाई माणकचन्द्र के उपकार का भी आप सदैव स्मरण करते हैं। आप कहते हैं कि उसने अध्ययन के द्वार को पुनः उद्घाटित किया था। समाज सेवा के क्षेत्र में भाई मनोहरलाल और श्री सौभाग्यमलजी जैन वकील सा. आपके सहयोगी एवं मार्गदर्शक रहे हैं। आप यह मानते हैं कि "मैं जो कुछ भी हूँ वह पूरे समाज की कृति हूँ, उसके पीछे अनगिनत हाथ रहे हैं। मैं किन-किन का स्मरण करूँ अनेक तो ऐसे भी होंगे जिन की स्मृति भी आज शेष नहीं है।"

वस्तुतः व्यक्ति अपने आप में कुछ नहीं है, वह देश, काल, परिस्थिति और समाज की निर्मिति है, जो इन सबके अवदान को स्वीकार कर उनके प्रत्युपकार की भावना रखता है, वह महान् बन जाता है चिर, जीवी हो जाता है। अन्यथा अपने ही स्वार्थ एवं अहं में सिमटकर समाप्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# ग्रन्थ-प्रणयन

| क्रमांक | पुस्तक का नाम | प्रकाशक |
|---|---|---|
| 1. | जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग -1 | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982 |
| 2. | जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग -2 | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982 |
| 3. | जैन, बौद्ध और गीता का समाज दर्शन | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982 |
| 4. | जैन, बौद्ध और गीता का साधना मार्ग | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982 |
| 5. | जैनकर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1982 |
| 6. | धर्म का मर्म | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1986 |
| 7. | अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1988 |
| 8. | ऋषिभाषित : एक अध्ययन | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर 1988 |
| 9. | जैन भाषा दर्शन | भोगीलाल लहेरचन्द भारतीय संस्कृति मन्दिर, दिल्ली-पाटण 1986 |
| 10. | जैनधर्म का एक विलुप्त सम्प्रदाय : यापनीय | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1994 |
| 11. | तत्त्वार्थसूत्र और उसकी परम्परा | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1994 |
| 12. | अनेकान्त, स्याद्वाद और सप्तभंगी | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी 1990 |
| 13. | Doctoral Dissertations in Jainism and Buddhism (With Dr. A.P. Singh) | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, 1983 |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# पुस्तिकाएँ

| | | |
|---|---|---|
| 1. | अनेकान्त की जीवन दृष्टि ( श्री सौभाग्यमल जी जैन के साथ ) | भारत जैन महामण्डल, बम्बई, 1975 |
| 2. | अहिंसा की सम्भावनायें | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1980 |
| 3. | जैन साहित्य और शिल्प में बाहुबली ( डॉ. मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी के साथ ) | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981 |
| 4. | पर्युषण पर्व : एक विवेचन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 5. | जैन एकता का प्रश्न | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 6. | जैन अध्यात्मवाद : आधुनिक सन्दर्भ में | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 7. | श्रावक धर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 8. | धार्मिक सहिष्णुता और जैनधर्म | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1985 |
| 9. | भारतीय संस्कृति में हरिभद्र का अवदान | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |
| 10. | जैन साधना पद्धति में तप | सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1981 |

# अनूदित-ग्रन्थ

| | | |
|---|---|---|
| 1. | History of Ethics, Sidzwick | हिन्दी अनुवाद ( अप्रकाशित ) |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रस्तावनाएँ

| | |
|---|---|
| 1. चरणकरणानुयोग, द्वितीय खण्ड की विस्तृत भूमिका | आगम अनुयोग प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद |
| 2. जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी |
| 3. प्रमुख जैन साध्वियाँ और महिलाएँ | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी |
| 4. स्याद्वाद और सप्तभंगी | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी |
| 5. इसिभासियाइं | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी |
| 6. चन्द्रवेध्यक-प्रकीर्णक | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, भूमिका डॉ. सागरमल एवं सुरेश सिसोदिया |
| 7. महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर भूमिका डॉ. सागरमल एवं सुरेश सिसोदिया |
| 8. तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर भूमिका डॉ. सागरमल जैन एवं सुभाष कोठारी |
| 9. देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर भूमिका डॉ. सागरमल जैन एवं सुभाष कोठारी |
| 10. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति प्रकीर्णक | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर भूमिका डॉ. सागरमल जैन एवं सुरेश सिसोदिया |
| 11. Lord Mahavira | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी |
| 12. जिनवाणी के मोती | जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, मद्रास |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# ग्रन्थ-सम्पादन

| ग्रन्थ | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक |
|---|---|---|
| 1. रत्न ज्योति | सम्पादक डॉ. सागरमल जैन | श्री स्थानकवासी जैन समाज, शाजापुर, 1971 |
| 2. चिन्तन के नये आयाम | श्री सौभागयमल जैन | अ.भा.स्था. जैन कान्फरेन्स, देहली |
| 3. जैन साहित्य का बृहत इतिहास, भाग-7 | पं. के. भुजबलीशास्त्री ; विद्याधर जोहरापुरकर ; | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981 |
| 4. हिन्दी जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-1 | डॉ. शितिकंठ मिश्र | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1989 |
| 5. हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-2 | डॉ. शितिकंठ मिश्र | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1992 |
| 6. जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन | डॉ. अर्हद्दास बण्डोवा दिगे | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981 |
| 7. आनन्दघन का रहस्यवाद | साध्वी श्री सुदर्शनाजी | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 8. प्राकृत दीपिका | डॉ. सुदर्शनलाल जैन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 9. जैन दर्शन में आत्म विचार | डॉ. लालचन्द जैन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1984 |
| 10. जैनाचार्यों का अलंकारशास्त्र में योगदान | डॉ. कमलेशकुमार जैन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1984 |
| 11. खजुराहों की जैन मन्दिरों की मूर्तिकला | डॉ. रत्नेशकुमार वर्मा | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1984 |
| 12. वज्जालग्गं | श्री विश्वनाथ पाठक | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1984 |
| 13. जैन और बौद्ध भिक्षुणी संघ | डॉ. अरुणप्रताप सिंह | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1986 |
| 14. आचारांग सूत्र : एक अध्ययन | डॉ. परमेष्ठीदास जैन | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |
| 15. मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन | डॉ. फूलचन्द जैन (प्रेमी) | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |
| 16. तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार | डॉ. रमेशचन्द्र गुप्त | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1988 |
| 17. स्याद्वाद और सप्तभंगीनय | डॉ. भिखारीराम यादव | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1989 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

| | | |
|---|---|---|
| 18. सम्बोध सप्ततिका | डॉ. रविशंकर मिश्र, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1986 |
| 19. प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन | डॉ. कमलप्रभा जैन, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1988 |
| 20. जैन साहित्य के विविध आयाम-1 | सम्पादक डॉ. सागरमल जैन, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981 |
| 21. जैन साहित्य के विविध आयाम-2 | सम्पादक डॉ. सागरमल जैन, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1990 |
| 22. जैन साहित्य के विविध आयाम-3 | सम्पादक डॉ. सागरमल जैन, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1990 |
| 23. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि काव्याञ्जलि | सम्पादक डॉ. सागरमल जैन एवं डॉ. हरिहर सिंह | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1981 |
| 24. जैनधर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ | डॉ. हीराबाई, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1991 |
| 25. जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन | डॉ. शिवप्रसाद, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1991 |
| 26. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म | डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1992 |
| 27. मानव जीवन और उसके मूल्य | श्री जगदीश सहाय, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1990 |
| 28. जैन मेघदूतम् | डॉ. रविशंकर मिश्र, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1989 |
| 29. जैनकर्म सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास | डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1993 |
| 30. Theory of Reality in Jaina Philosophy | Dr. J.C. Sikdar, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1991 |
| 31. Concept of Matter in Jaina Philosophy | Dr. J.C. Sikdar | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |
| 32. Jaina Epistemology | Dr. Indra Chand Sastri, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1990 |
| 33. The Concept of Pancasila in Indian Thought | Dr. Kamal Jain, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1983 |
| 34. The Path of Arhat | T.U. Mehta, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1993 |
| 35. Jaina Perspectives in Philosophy & Religion | Dr. Ramjee Singh, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1993 |
| 36. Aspects of Jainology Vol. I | Dr. Sagarmal Jain, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |
| 37. Aspects of Jainology Vol. II | Dr. Sagarmal Jain & M.A. Dhaky, | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1987 |

| | | |
|---|---|---|
| 38. Aspects of Jainology Vol. III | Dr. Sagarmal Jain & M.A. Dhaky | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1991 |
| 39. Aspects of Jainology Vol IV | Dr. Sagarmal Jain & Dr. A.K. Singh | पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1993 |
| 40. Samana Suttam [English Translation] | Justice T.K. Tukol & Dr.K.K. Dixit | Sarvaseva Sangh Prakashan, Vns. 1993 |
| 41. महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक | सुरेश सिसोदिया | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1991 |
| 42. चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक | सुरेश सिसोदिया | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1991 |
| 43. तंदुलवैचारिक प्रकीर्णक | डॉ. सुभाष कोठारी | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1991 |
| 44. प्राकृत भारती | डॉ. प्रेम सुमन जैन, डा. सुभाष कोठारी, | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1991 |
| 45. देवेन्द्रस्तव | डॉ. सुभाष कोठारी, | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1987 |
| 46. द्वीप सागर प्रज्ञप्ति | डॉ. सुरेश सिसोदिया, | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1987 |
| 47. उपासकदशांग में वर्णित श्रावकाचार | डॉ. सुभाष कोठारी, | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1987 |
| 48. जैनधर्म के सम्प्रदाय | डॉ. सुरेश सिसोदिया, | आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, 1994 |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# शोध-छात्र

| | |
|---|---|
| 1. डॉ. भिखारीराम यादव | जैन तर्कशास्त्र के सप्तभंगीनय की आधुनिक व्याख्या, 1983 |
| 2. डॉ. अरुणप्रताप सिंह | जैन और बौद्ध भिक्षुणी संघ का उद्भव, विकास एवं स्थिति, 1983 |
| 3. डॉ. रविशंकर मिश्र | महाकवि कालिदासकृत मेघदूत और जैन कवि मेरुतुङ्गकृत जैनमेघदूत का साहित्यिक अध्ययन, 1983 |
| 4. महो. चन्द्रप्रभसागर | समय सुन्दर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1986 |
| 5. डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र | जैन कर्म सिद्धान्त का ऐतिहासिक विश्लेषण, 1986 |
| 6. डॉ. रमेशचन्द्र गुप्त | तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार की अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन, 1986 |
| 7. डॉ. कमलप्रभा जैन | प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित आर्थिक जीवन : एक अध्ययन, 1986 |
| 8. डॉ. महेन्द्रनाथ सिंह | उत्तराध्ययन और धम्मपद का तुलनात्मक अध्ययन, 1986 |
| 9. डॉ. त्रिवेणीप्रसाद सिंह | जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में मानव व्यक्तित्व का वर्गीकरण, 1987 |
| 10. श्री उमेशचन्द्र सिंह | जैन आगम साहित्य में शिक्षा, समाज एवं अर्थव्यवस्था 1987 |
| 11. डॉ. रज्जनकुमार | जैनधर्म में समाधिमरण की अवधारणा, 1987 |
| 12. डॉ. (श्रीमती) रीता सिंह | प्राकृत और जैन संस्कृत साहित्य में कृष्ण कथा, 1989 |
| 13. डॉ. इन्द्रेशचन्द्र सिंह | जैन साहित्य में वर्णित सैन्यविज्ञान एवं युद्धकला, 1990 |
| 14. डॉ. श्रीनारायण दूबे | जैन अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1990 |
| 15. डॉ. (श्रीमती) संगीता झा | धर्म और दर्शन के क्षेत्र में आचार्य हरिभद्र का अवदान, 1990 |
| 17. डॉ. धनंजय मिश्र | हरिभद्र का योग के क्षेत्र में योगदान, 1991 |
| 18. डॉ. (श्रीमती) गीता सिंह | औपनिषदिक साहित्य में श्रमण परम्परा के तत्त्व, 1991 |
| 19. डॉ. (श्रीमती) अर्चना पाण्डेय | भाषा दर्शन को जैन दार्शनिकों का योगदान, 1991 |
| 20. डॉ. (श्रीमती) मंजुला भट्टाचार्या | जैन दार्शनिक ग्रन्थों में ईश्वर कर्तृत्व की समालोचना, 1992 |



Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

21. डॉ. रवीन्द्रकुमार — शीलदूत और संस्कृत दूतकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, 1992
22. डॉ. के.वी.एस.पी.बी. आचार्युलु — वैखानस जैन योग का तुलनात्मक अध्ययन, 1992
23. डॉ. जितेन्द्र बी.शाह — नयचक्र का दार्शनिक अध्ययन, 1992

## अनौपचारिक मार्ग-निर्देशन

24. डॉ. श्यामनन्दन झा — कुन्दकुन्द और शंकर के दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, 1973
25. साध्वीश्री प्रियदर्शना श्री जी — आनन्दघन का रहस्यवाद, 1982
26. साध्वीश्री सुदर्शना श्री जी — आचारांगसूत्र का नैतिक दर्शन, 1982
27. साध्वीश्री प्रमोद कुमारी जी — इसिभासियाइं सूत्र का दार्शनिक अध्ययन, 1991



Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

# कार्यरत शोध छात्र

| | |
|---|---|
| 1. श्रीमती शुभा तिवारी | पउमचरियं में सामाजिक चेतना : एक समीक्षात्मक अध्ययन |
| 2. श्री विरेन्द्र नारायण तिवारी | प्रमुख स्मृतियाँ तथा जैनधर्म में प्रायश्चित्त विधि |
| 3. श्री दयानन्द ओझा | जयोदय महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन |
| 4. श्री असीमकुमार मिश्र | ऐतिहासिक अध्ययन के जैन स्रोत और उनकी प्रामाणिकता एक अध्ययन |
| 5. कुमकुमराय | धर्मशर्माभ्युदय काव्य : एक अध्ययन |
| 6. श्री मणिनाथ मिश्र | जैन चम्पूकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन |
| 7. कु. बेबी | सोमेश्वरदेव कृत कीर्तिकौमुदी का आलोचनात्मक अध्ययन |
| 8. श्रीमती कंचन सिंह | पार्श्वाभ्युदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन |
| 9. कु. आभा | आख्यानक मणिकोश का आलोचनात्मक अध्ययन |
| 10. हनुमानप्रसाद मिश्र | जैन प्रायश्चित्त विधि |

## जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में पंजीकृत शोध छात्र

| | |
|---|---|
| 11. श्री रणवीर सिंह भदौरिया | गीता में प्रतिपादित विभिन्न योग |



Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

# का.हि.वि.वि. एम.ए. दर्शन (अन्तिमवर्ष) की परीक्षा हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्धों की सूची

| क्रमांक | नाम | विषय | वर्ष |
|---|---|---|---|
| 1. | उदयप्रताप सिंह | जैनधर्म में समाधिमरण | 1979-80 |
| 2. | अवधेशकुमार सिंह | द सिस्टम आव वैल्यूज इन जैन फिलॉसफी | 1979-80 |
| 3. | कृष्णकान्त कुमार | जैनधर्म के सम्प्रदाय | 1980 |
| 4. | ताड़केश्वर नाथ | जैनधर्म में मोक्ष एवं मोक्षमार्ग | 1980 |
| 5. | रामाश्रयसिंह यादव | जैन कर्म सिद्धान्त | 1980 |
| 6. | सतीशचन्द्र सिंह | जैनदर्शन में प्रमाण | 1980-81 |
| 7. | शिवपरसन सिंह | आचार्य कुन्दकुन्द के दर्शन में आत्मा का स्वरूप | 1980-81 |
| 8. | अशोककुमार | उपासकदशांग के अनुसार श्रावक धर्म | 1980-81 |
| 9. | वीरेन्द्रकुमार | जैनदर्शन में जीव की अवधारणा | 1980-81 |
| 10. | त्रिवेणीप्रसाद सिंह | रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अनुसार गृहस्थ धर्म | 1981 |
| 11. | मुकुलराज मेहता | जैनधर्म में आध्यात्मिक विकास : एक तुलनात्मक विवेचन | 1981 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रमांक | लेख का नाम | पत्रिका/अंक | वर्ष | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | जैन दर्शन में निश्चय और व्यवहार नय | दार्शनिक | जुलाई | 1974 |
| 2. | जैन दर्शन का त्रिविध साधना मार्ग | The Vikram/नानचंद जी जन्म शताब्दी स्मृति ग्रन्थ | मई एवं नवम्बर | 1974 |
| 3. | निश्चय और व्यवहार किसका आश्रय लें ? | आचार्य आनन्द ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ | | 1975 |
| 4. | अहिंसा : एक तुलनात्मक अध्ययन | वीर निर्वाण स्मारिका | | 1975 |
| 5. | अद्वैतवाद और आचार दर्शन की सम्भावना | दार्शनिक | अक्टूबर | 1975 |
| 6. | भगवान महावीर का अपरिग्रह सिद्धान्त और उसकी उपादेयता | जिनवाणी, | अप्रैल | 1979 |
| 7. | जैन, बौद्ध और गीता दर्शन में मोक्ष का स्वरूप : एक तुलनात्मक अध्ययन | राजेन्द्र-ज्योति | 1975-76 | |
| 8. | नीति के निरपेक्ष एवं सापेक्ष तत्त्व | दार्शनिक | अप्रैल | 1976 |
| 9. | महावीर के सिद्धान्त : आधुनिक सन्दर्भ में | महावीर जयन्ती स्मारिका | | 1976 |
| 10. | सप्तभंगी : त्रिमूल्यात्मक तर्कशास्त्र के सन्दर्भ में | महावीर जयन्ती स्मारिका | | 1977 |
| 11. | स्याद्वाद : एक चिन्तन | महावीर जयन्ती स्मारिका | | 1977 |
| 12. | जैन दर्शन में नैतिकता की सापेक्षता और निरपेक्षता | मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रन्थ | | 1977 |
| 13. | जैन दर्शन में मोक्ष का स्वरूप | तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ | | 1977 |
| 14. | समाधिमरण (मृत्युवरण) : एक तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन | सम्बोधि, वाल्यूम 6 | अक्टूबर | 1977 |
| 15. | मूल्यबोध की सापेक्षता | दार्शनिक | अक्टूबर | 1977 |
| 16. | मानवतावाद और जैनाचार दर्शन | तीर्थंकर | जनवरी | 1978 |
| 17. | भारतीय दर्शन में सामाजिक चेतना | दार्शनिक | जनवरी | 1978 |
| 18. | नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता का प्रश्न | दार्शनिक | अप्रैल | 1978 |

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

www.jainelibrary.org

| | | | |
|---|---|---|---|
| 19. जैनदर्शन में नैतिक मूल्यांकन का विषय | तुलसी प्रज्ञा/वाल्यूम 4, अंक 3 | | 1978 |
| 20. जैन, बौद्ध और गीता के दर्शन में कर्म का शुभत्व एवं अशुभत्व और शुद्धत्व | महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर | | 1978 |
| 21. जैनदर्शन के 'तर्क प्रमाण' का आधुनिक सन्दर्भों में मूल्यांकन | दार्शनिक | अक्टूबर | 1978 |
| 23. मनः शक्ति, स्वरूप और साधना : एक विश्लेषण | श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ | | 1979 |
| 24. सदाचार के शाश्वत मानदण्ड और जैनधर्म (500/-रुपये का प्रथम पुरस्कार प्राप्त) | श्री दिवाकर स्मृति ग्रन्थ | | 1978 |
| 25. जैन दर्शन में मिथ्यात्व और सम्यक्त्व | श्री दिवाकर स्मृति ग्रन्थ | | 1978 |
| 26. प्रवर्तक एवं निवर्तक धर्मों का मनोवैज्ञानिक विकास एवं उनके दार्शनिक एवं सामाजिक प्रदेय | श्रमण/वर्ष 30, अंक 8, | दार्शनिक जून | 1979 |
| 27. जैन साधना के मनोवैज्ञानिक आधार | श्रमण/वर्ष 30, अंक 11 | सितम्बर | 1979 |
| 28. अहिंसा का अर्थ विस्तार, सम्भावना और सीमा क्षेत्र | श्रमण/वर्ष 31, अंक 3 | जनवरी | 1980 |
| 29. नैतिक मानदण्ड : एक या अनेक | दार्शनिक | जनवरी | 1980 |
| 30. बालकों के संस्कार निर्माण में अभिभावक, शिक्षक व समाज की भूमिका | श्रमण | जनवरी | 1980 |
| 31. धर्म क्या है ? (क्रमशः तीन अंको में) | श्रमण/वर्ष 31, अंक 4, फरवरी 1980, श्रमण/वर्ष 34 | फरवरी | 1983 |
| 32. जैन धर्म में भक्ति का स्थान | श्रमण/वर्ष 31, अंक 5 | मार्च | 1980 |
| 33. आत्मा और परमात्मा | श्रमण/वर्ष 31, अंक 5 | मार्च | 1980 |
| 34. अध्यात्म बनाम भौतिकवाद | श्रमण/वर्ष 31, अंक 6 | अप्रैल | 1980 |
| 35. संयम : जीवन का सम्यक् दृष्टिकोण | श्रमण/वर्ष 31, अंक 9 | सम्बोधि/वाल्यूम 8, जुलाई | 1980 |
| 36. भेद विज्ञान : मुक्ति का सिंहद्वार | श्रमण/वर्ष 31, अंक 9 | जुलाई | 1980 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 37. जैन एवं बौद्ध धर्म में स्वहित और लोकहित का प्रश्न | श्रमण/वर्ष 32, अंक 3 | जनवरी | 1981 |
| 39. सदाचार के मानदण्ड और जैनधर्म | श्रमण/वर्ष 32, अंक 4 | फरवरी | 1981 |
| 40. महावीर का दर्शन : सामाजिक परिप्रेक्ष्य में | श्रमण/वर्ष 32, अंक 6 | अप्रैल | 1981 |
| 41. सत्ता कितनी वाच्य कितनी अवाच्य ? जैन दर्शन के सन्दर्भ में | दार्शनिक | अप्रैल | 1981 |
| 42. आधुनिक मनोविज्ञान के सन्दर्भ में आचारांग सूत्र का अध्ययन | तुलसी-प्रज्ञा/खण्ड 6, अंक 9 | | 1981 |
| 43. महावीर के सिद्धान्त : युगीन सन्दर्भ में | श्रमण/वर्ष 33, अंक 6 | अप्रैल | 1982 |
| 44. पर्युषण पर्व : क्या, कब, क्यों और कैसे ? | श्रमण/वर्ष 33, अंक 10 | अगस्त | 1982 |
| 45. असली दूकान/नकली दूकान | श्रमण/वर्ष 33, अंक 10 | अगस्त | 1982 |
| 46. व्यक्ति और समाज | श्रमण/वर्ष 34, अंक 2 | दिसम्बर | 1982 |
| 47. जैन एकता का प्रश्न | श्रमण/वर्ष 34 | जनवरी | 1983 |
| 48. जैन साहित्याकाश का एक नक्षत्र विलुप्त | श्रमण | फरवरी | 1983 |
| 49. ज्ञान और कथन की सत्यता का प्रश्न : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में | परामर्श/अंक3, Vaishali Institute Research Bulletin No.4 | जून | 1983 |
| 50. जैन अध्यात्मवाद आधुनिक सन्दर्भ में | श्रमण/वर्ष 34 | अगस्त | 1983 |
| 51. दस लक्षण पर्व/दस लक्षण धर्म के | श्रमण/वर्ष 34, अंक 11 | सितम्बर | 1983 |
| 52. पर्युषण पर्व : एक विवेचन | श्रमण/वर्ष 35 | | 1983 |
| 53. श्रावक धर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न | श्रमण | | 1984 |
| 54. भाग्य बनाम पुरुषार्थ | श्रमण/वर्ष 36, अंक 9 | जुलाई | 1985 |
| 55. श्वेताम्बर साहित्य में रामकथा का स्वरूप | श्रमण/वर्ष 36, अंक 12 | अक्टूबर | 1985 |
| 56. महावीर का जीवन दर्शन | श्रमण/वर्ष 37, अंक 6 | अप्रैल | 1986 |
| 57. धर्म और दर्शन के क्षेत्र में हरिभद्र का अवदान | श्रमण/वर्ष 37, अंक 12 | अक्टूबर | 1986 |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | | | |
|---|---|---|---|
| 58. हरिभद्र के धर्मदर्शन में क्रांतिकारी तत्त्व | श्रमण/वर्ष 37, अंक 12 | अक्टूबर | 1986 |
| 59. हरिभद्र की क्रांतिदर्शी दृष्टि :धूर्ताख्यान के सन्दर्भ में | श्रमण/वर्ष 39/अंक 4 | फरवरी | 1987 |
| 60. हरिभद्र के धूर्ताख्यान का मूल स्रोत | श्रमण/वर्ष 39/अंक 4 | फरवरी | 1987 |
| 61. जैन वाक्य दर्शन | Vaishali Institute Research Bulletin No. 6 | | 1987 |
| 62. जैन साहित्य में स्तूप | Aspects of Jainology/Vol. II | | 1987 |
| 63. रामपुत्त या रामगुप्त : सूत्रकृतांग के सन्दर्भ में | Aspects of Jainology/Vol. II | | 1987 |
| 64. जैन धर्म में नैतिक और धार्मिक कर्त्तव्यता का स्वरूप | Aspects of Jainology/Vol. I | | 1987 |
| 65. आचारांगसूत्र का विश्लेषण | श्रमण/वर्ष 39/अंक 2 | दिसम्बर | 1987 |
| 66. जैनधर्म का एक विलुप्त सम्प्रदाय : यापनीय | श्रमण | जुलाई | 1988 |
| 67. अध्यात्म और विज्ञान | श्रमण | अक्टूबर | 1989 |
| 68. आचार्य हेमचन्द्र : एक युग पुरुष | श्रमण | अक्टूबर | 1989 |
| 69. सतीप्रथा और जैनधर्म | साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ | | 1990 |
| 70. स्याद्वाद और सप्तभंगी : एक चिन्तन | श्रमण | जनवरी-मार्च | 1990 |
| 71. जैनधर्म में तीर्थ की अवधारणा | श्रमण | अप्रैल-जून | 1990 |
| 72. पार्श्वनाथ जन्मभूमि मन्दिर वाराणसी का पुरातत्त्वीय वैभव | श्रमण/संस्कृति संधान, वाल्यूम 3 | | 1990 |
| 73. जैन परम्परा का ऐतिहासिक विश्लेषण | श्रमण | जुलाई-सितम्बर | 1990 |
| 74. जैनधर्म में नारी की भूमिका | श्रमण | अक्टूबर-दिसम्बर | 1990 |
| 75. जैनधर्म के धार्मिक अनुष्ठान एवं कला तत्त्व | श्रमण | जनवरी-मार्च | 1991 |
| 76. समाधिमरण की अवधारणा की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षा | श्रमण | अप्रैल-जून | 1991 |
| 77. उच्चैर्नागरशाखा के उत्पत्ति स्थान एवं उमास्वाति के जन्म स्थल की पहचान | श्रमण | जुलाई-दिसम्बर | 1991 |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | | | |
|---|---|---|---|
| 78. अन्तकृद्दशा की विषयवस्तु : एक पुर्नविचार | Aspects of Jainology/वाल्यूम 3 | | 1991 |
| 79. मूल्य और मूल्य बोध की सापेक्षता का सिद्धान्त | श्रमण | जनवरी-मार्च | 1992 |
| 80. गुणस्थान सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास | श्रमण | जनवरी-मार्च | 1992 |
| 81. श्वेताम्बर मूलसंघ एवं माथुर संघ : एक विमर्श | श्रमण | जुलाई-सितम्बर | 1992 |
| 82. जैनधर्म और आधुनिक विज्ञान | श्रमण | अक्टूबर-दिसम्बर | 1992 |
| 83. प्रश्नव्याकरणसूत्र की प्राचीन विषयवस्तु की खोज | प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड | | 1992 |
| 84. बौद्धधर्म में सामाजिक चेतना | धर्मदूत | | 1994 |
| 85. भारतीय संस्कृति का समन्वित स्वरूप | श्रमण | अप्रैल-जून | 1994 |
| 86. जैनधर्म और सामाजिक समता | श्रमण | अप्रैल-जून | 1994 |
| 87. पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या और जैनधर्म | श्रमण | अप्रैल-जून | 1994 |
| 88. जैनधर्म में स्वाध्याय का अर्थ एवं स्थान | श्रमण | | 1994 |
| 89. जैन कर्म सिद्धान्त : एक विश्लेषण | श्रमण | | 1994 |
| 90. अर्धमागधी आगम साहित्य में समाधिमरण की अवधारणा | श्रमण | | 1994 |
| 91. ऋग्वेद में अर्हत् और ऋषभवाची ऋचाएँ : एक अध्ययन | श्रमण | | 1994 |
| 92. निर्युक्ति साहित्य : एक पुनर्चिन्तन | श्रमण | | 1994 |
| 93. जैनधर्म-दर्शन का सार तत्त्व | श्रमण | | 1994 |
| 94. भगवान महावीर का जीवन और दर्शन | श्रमण | | 1994 |
| 95. जैनधर्म में भक्ति की अवधारणा | श्रमण | | 1994 |
| 96. महावीर के समकालीन विभिन्न आत्मवाद एवं उसमें जैन आत्मवाद का वैशिष्ठय् | | सुधर्मा | 1966 |
| 97. जैन साधना में ध्यान | श्रमण जनवरी, 1994 | | |
| 98. गीता में नियतिवाद और पुरूषार्थवाद की समस्या और यथार्थ जीवन-दृष्टि | प्राच्यप्रतिभा, भोपाल | | |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | |
|---|---|
| 99. बौद्धदर्शन और गीता के सन्दर्भ में : जैन आचार दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन नामक शोध-प्रबन्ध की संक्षिप्तिका | तुलसी-प्रज्ञा, 5 |
| 100. षट्जीव-निकाय में त्रस एवं स्थावर के वर्गीकरण की समस्या | श्रमण, अप्रैल-जून 1993 |
| 101. फ्रायड और जैनदर्शन | तीर्थंकर |
| 102. निवृत्ति और प्रवृत्ति : एक तुलनात्मक अध्ययन | श्रमणोपासक |
| 103. धर्मसाधना का स्वरूप | अप्रकाशित |
| 104. प्राचीन जैनागमों में चार्वाक दर्शन का प्रस्तुतिकरण एवं समीक्षा | अप्रकाशित |
| 105. मूलाचार और उसकी परम्परा | अप्रकाशित |
| 106. जैन आगम साहित्य में श्रावस्ती | अप्रकाशित |
| 107. Jaina Concept of Peace | Chokhamba, Centenary Commemoration Volum |
| 118. The Philosophical foundation of Religious tolerence in Jainism | Aspect of Jainology, Vol.I |
| 119. A Search for the Possibility of Non-violence and Peace, | Jain Journal Vol.25/No.3 |
| 110. Mahaviras Theory of Samatva Yoga : A Psycho-analytical Approach, | Jain Journal Vol.9/No.3 |
| 111. The Concept of Vibhajjavada in Buddhism and Jainism, | Jain Journal Vol.19/No.3 |
| 112. The Relevance of Jainism in Present World | Jain Journal, Vol.22/No.1 |
| 113. The Ethics of Jainism and Swaminarayan : A Comparative Study | New Dimensions in Vedant Philosophy |
| 114. Religious Harmony and Fellowship of Faiths : A Jain Perspective | Being Published |
| 115. Prof. K.S. Murty's Philosophy of Peace and non-Violence | Being Published |
| 116. Equanimity and Meditation | Being Published |
| 117. The Teaching of Arhat Parsva and the Distinctness of his Sect | Being Published |
| 118. The Solutions of World Problems from Jaina Perspective | Being Published |
| 119. Jaina Sadhana and Yoga | Being Published |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org